सुशीला टाकभौरे की साहित्यिक दृष्टि

- डॉ. सुमित्रा महरोल

सुशीला टाकभौरे हिन्दी दलित साहित्य की अग्रणी महिला साहित्यकारों में से एक हैं। अनेक अवरोधों, बाधाओं, चुनौतियों, झंझावातों से जूझने के उपरांत, दलित साहित्य अपनी प्रबल उपस्थिति साहित्य में दर्ज करा चुका है व दलित रचनाकारों द्वारा साहित्य की विभिन्न विधाओं में निरन्तर सृजन हो रहा है। पुरुष दलित साहित्यकार की दृष्टि शोषण पर आधारित ब्राह्मणवादी व्यवस्था को तोड़, समतामूलक समाज के गठन पर ही टिकी हुई है। नारी अधिकांशतः उनके साहित्य में, एक शोषित के रूप में आई है। किन्तु सुशीला जी के सरोकार दलित समाज के उत्थान तक ही सीमित नहीं रहे, उनकी दृष्टि दलित नारी पर भी टिकी है, जो जाति, धर्म व पितृसत्ता से, समान रूप से प्रताड़ित है। दलित नारी की मुक्ति की आकांक्षा की पगध्वनि उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर सुनने को मिलेगी।

सुशीला टाकभौरे जी ने साहित्य की विभिन्न विधाओं जैसे कविता, कहानी, आत्मकथा, नाटक, एकांकी वैचारिक लेखों के माध्यम से, स्वयं को अभिव्यक्त किया है। 'स्वाति बूंद और खारे मोती', 'यह तुम भी जानो', 'हमारे

हिस्से का सूरज', 'तुमने उसे कब पहचाना' (काव्य-संग्रह), 'नंगा सत्य' (नाटक), 'रंग और व्यंग्य' (एकांकी संग्रह), 'परिवर्तन जरूरी है' (वैचारिक लेख), 'शिकंजे का दर्द' (आत्मकथा) इत्यादि उनकी प्रमुख व प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

वर्णवादी कुव्यवस्था के फलस्वरूप समाज के सबसे निचले पायदान पर पड़े, दलित समुदाय की अति दयनीय यथार्थ स्थिति का चित्रण तो आपने किया ही है, किन्तु आपकी दृष्टि चित्रण तक ही सीमित नहीं रही, इस विषमतामूलक स्थिति के लिए उत्तरदायी शक्तियों की भी आपने अच्छी पड़ताल की है। अपनी लेखनी से इन शक्तियों के विरुद्ध, दलित जन में चेतना जागृत कर, संगठित हो, समता के लिए संघर्ष के मार्ग को आपने प्रशस्त किया है। समतामूलक समाज का गठन तभी संभव है।

सदियों से दलित समाज गैरदलितों के शोषण के परिणामस्वरूप नारकीय जीवन जीता आया है। शिक्षा से वंचित होने के कारण, वह अपने शोषकों तक को नहीं पहचानता, वह अपनी स्थिति के लिए नियति को उत्तरदायी मान, स्थितियों से समझौता कर, पशुवत जीवन जीता रहता है। इस स्थिति में पहला कार्य है-उनमें चेतना जागृत करना, इस बोध को जागृत करना कि उनकी इस

नारकीय स्थिति की वास्तविक जिम्मेदारी किसकी है? तत्पश्चात् उस स्थिति से उबरने के लिए संगठित हो, यथास्थिति के खिलाफ आवाज उठाना।

सुशीला जी का अधिकांश साहित्य समाज में चेतना जागृत कर, यथास्थिति से विद्रोह का साहित्य है। अशिक्षा, अज्ञान व जड़ता के अंधकार में सोए दलित जनमानस को अपनी लेखनी से झकझोर कर, जगाने का काम सुशीला जी बखूबी कर रही हैं। 'बदलेगा कुंठित मानस' कविता में वह कहती हैं-

''समता सम्मान का अधिकारी
दलित शोषित यह इन्सान
जाग रहा है
चूहों की राह नहीं देखेगा वह
अब वह शेर की तरह दहाड़ेगा
अपने तन मन के बंधन
स्वयं तोड़ेगा।

टूटी हैं परम्पराएँ पुरान
बदले हैं पुरानी कहानियों के अंत
बदला है झूठा इतिहास
बदल रहा है भविष्य।''[1]

'स्वयं को पहचानो' कविता में वह आत्मशक्ति को पहचान, दुखद अतीत को परिवर्तित कर, सुखद भविष्य के स्वप्न सजा रही हैं-

''कब तक करोगे इंतजार
रोक लो सूरज के अश्वों को
पूर्वज पिता से अधिक बल है तुममें
तुम ही तोड़ोगे परम्परा से बंधा दृश्य
असमर्थ जीवन की व्यथा

वर्तमान के कानों को
समय की पुकार सुनने दो
अतीत की वाणी को मुखर होने दो
भविष्य की आँखों में
सम्मान का सपना सजने दो।''[2]

सुशीला जी अपने नाटक 'जीवन के रंग'[3] में जड़ परम्पराओं एवं पोंगा पंडितों के विरुद्ध खुलकर बरसी हैं। नाटक की नायिका गीता अपने दुखी जीवन से पलायन कर, अपने बच्चों को जहर दे देती है। पर बाद में जब मातृत्व जोर मारता है, तो विलाप करने लगती है। पड़ोसिन के सुझाव पर बच्चों में पुनः जीवन ज्योति जगाने पंडित आता है। पंडित विधि-विधानों के लिए ढेरों सामान की सूची उसे पकड़ाता है, उसके माध्यम से अपना उल्लू सीधा करने का मनोरथ रखता है। घर में फूटी कौड़ी तक नहीं थी, पूजा की सामग्री कहाँ से आती। गीता अभी असमंजस में ही थी, कि बच्चे स्वयं ही होश में आ जाते हैं। पंडित को दुम दबाकर भागना पड़ता है। नाटक में व्रत, हवन, पूजन, व्रत कथा इत्यादि से संबंधित जड़ मान्यताओं पर प्रहार कर,

वैज्ञानिक सोच अपनाने पर बल दिया गया है। गीता और उसका परिवार कर्मपथ पर अग्रसर हो, लगन परिश्रम के बल पर अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त करता है।

'रंग और व्यंग्य'[4] नाटक संग्रह में संकलित सभी रचनाएँ जड़ परम्पराओं, मान्यताओं, सामाजिक विषमताओं एवं विद्रूपताओं पर प्रहार करती हैं। 'चश्मा' नाटक में स्त्री के प्रति सामंती पितृसत्तात्मक मानसिकता को बदलकर, पति पत्नी के बीच समान आत्मीय सौहाद्रपूर्ण संबंधों की कल्पना की गई है।

नाटक 'नंगा सत्य'[5] ग्रामीण परिवेश पर आधारित है। समकालीन यथार्थ का चित्रण नाटक का उद्देश्य है। नाटक में गैरदलितों का दलितों पर शोषण व अत्याचार है, समाज में फैला अनाचार व पाखंड है। गांव के सवर्ण जमींदार अशक्त किसानों मजदूरों व गांव के अन्य निर्बल कमजोर वर्गों को भांति-भांति से प्रताड़ित करते हैं, चालाकी से उनके घर, खेत हड़प लेते हैं, उन्हें आजीवन कर्ज के शिकंजे में कसे रखते हैं।

शूद्र यदि शिक्षित भी हो जाएं, तो भी गांव में रहते हुए उन्हें परम्परागत पेशों को ही अपनाना पड़ता है। किन्तु नाटक में इतना ही नहीं है, इसके बाद की स्थितियों की भी सुखद कल्पना की गई है। जब शोषित वर्ग शिक्षित व

संगठित होकर, शोषक वर्ग के सामने खड़ा हो जाता है, तब शोषको के लिए उनका दमन करना इतना आसान नहीं रहता। विवश होकर सबलों को, संगठित वंचितों से हाथ मिलाने में ही अपनी भलाई दिखती है। बाबासाहब अम्बेडकर के दिखाए मार्ग पर चलने के कारण, दलित अब पूर्व निर्धारित व्यवस्था को नकार देते हैं व समानता का अधिकार चाहते हैं।

जाति, धर्म व पितृसत्ता रूपी कटारों ने सबसे मर्मान्तक घाव दलित स्त्रियों को ही दिए हैं। दलित स्त्रियाँ जाति व पितृसत्ता दोनों का सम्मिलित अत्याचार झेलती हैं। इसलिए उनके अनुभव बहुआयामी हो जाते हैं। दलित साहित्य में दलित स्त्री की स्थिति का सच्चा बेबाक अंकन है।

सुशीला जी की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द'[6], जो 'अन्यथा', 'अपेक्षा' एवं 'पब्लिक एजेंडा' नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है व वाणी प्रकाशन से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई है। दलित, स्त्री व निर्धनता रूपी तिहरे संतापों को झेलती सुशीला जी परिस्थितियों के समक्ष झुकती नहीं, अपितु अपने परिश्रम, लगन, आत्मविश्वास व मनोबल के चलते, न केवल अपने जीवन लक्ष्यों को प्राप्त करती हैं, बल्कि समाज के समक्ष आदर्श के रूप में स्थापित हो चुकी हैं।

सुशीला जी को बचपन में दलित होने के कारण, अनेकों बार कभी विद्यालय में, तो कभी गांव में अपमानजनक स्थितियों से गुजरना पड़ा। परिवार की आर्थिक दशा भी संतोषजनक नहीं थी। परिस्थितियों का कुचक्र, उम्र में अपने से काफी बड़े व्यक्ति के साथ उनका पाणिग्रहण करवा देता है। दलित समुदाय में वह बोध नहीं होता कि अपनी कन्या का हाथ दूसरे के हाथ में सौंपने से पहले यथेष्ठ पड़ताल कर, कन्या का भविष्य सुनिश्चित कर पाएं। वहाँ तो लड़की की शादी को बस निपटा भर दिया जाता है।

पतिगृह में पितृसत्ता की मानसिकता से भरे सामंती माहौल में अनेक गृह क्लेशों से दो चार होती हुई, सुशीला जी घर व बाहर अनेकों बार दलित अपमानों व उपेक्षाओं का सामना करती हैं। पर इन सबसे वह टूटती नहीं, अपितु हालातों से शक्ति ग्रहण कर, आर्थिक रूप से समर्थ बन, उन्नति के मार्ग पर चलती जाती है। घर व बाहर की सारी जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए, अपनी शिक्षा भी जारी रखती है। अन्ततः पीएच.डी. कर, कॉलेज में प्राध्यापिका बन, अपना व परिवार का भविष्य संवारती है।

दलित समाज सुधार एवं नारी जागृति आन्दोलन से भी आप जुड़ी हुई हैं और लेखनी के माध्यम से तो समाज के लोगों में चेतना जागृत करने का,

उनको दिशा दिखाने का कार्य आप कर ही रही हैं। दलित नारी की वास्तविक स्थिति के साथ-साथ, उससे आगे स्थिति के उद्धार, परिष्कार के सन्दर्भ में भी आप प्रेरणादायी हैं।

'संघर्ष'[7] नामक कहानी-संग्रह में संकलित सुशीला टाकभौरे जी की कहानियाँ दो दिशाओं की ओर अग्रसरित हैं। दलित समुदाय की स्थिति एवं उससे विद्रोह की कहानियाँ तथा आधुनिक समय में दलित व गैरदलित स्त्री के आंतरिक व बाहरी संघर्ष की कहानियाँ।

'छौआ माँ' दलित स्त्री के विद्रोह की कहानी है। छौआ दाई है, ताउम्र गांव की सेवा में व्यतीत करने के उपरांत भी, ज्यों की त्यों पददलित ही रहती है। अन्ततः वह हिम्मत संजोकर दाईगिरी को तिलांजली देने का निर्णय लेती है।

इसी तरह 'सिलिया' कहानी सवर्णों की संकीर्ण दृष्टि व नीति के खिलाफ एक दलित लड़की के अदम्य साहस, जीवट व जिजीविषा की कहानी है, तभी तो जो हाथ कभी, उस दलित बालिका को दो घूँट पानी तक से वंचित रखते हैं, वहीं हाथ उसी बालिका को कुछ कालोपरांत खचाखच भरे सभागार में सम्मानित करते हैं। सिर्फ यथास्थिति से समझौता न करने के

कारण, शिक्षा के बूते पर, सिलिया अपना उद्धार कर दूसरों को भी रास्ता दिखाने के योग्य बन पाती है–अन्यों के लिए प्रेरणा बन जाती है।

'सम्भव असंभव' पुरातन व नवीन मूल्यों के स्वीकार व अस्वीकार से संबंधित है। कहानी की नायिका मनाली अंतर्द्वन्द्व में पड़ी है। स्त्री संबंधी नई सोच आगे की ओर ले जाती है, पर पुरातन मूल्य पीछे की ओर खींचने में भी लगे हैं। अन्ततः नवीन ही पुरातन पर विजय प्राप्त करता है।

'मुझे जबाब देना है' कहानी व्यक्तिगत स्वार्थी व सुखों से ऊपर उठकर सामाजिक दायित्वों को समझने–निभाने की कहानी है। व्यक्तिगत सुखों को सीमित कर, यदि अपने साधनों को दलित समाज के उत्थान में लगाया जाए, तो आगामी सुखद भविष्य की कल्पना की जा सकती है। कहानी में एक आदर्श स्थिति की कल्पना की गई है।

'नई राह की खोज' समकालीन यथार्थ से संबंधित है। दलित समुदाय अपनी दीन–हीन स्थितियों के बावजूद, डिग्रियाँ हासिल कर भी लें, पर यदि सवर्ण समाज की सोच नहीं बदले, तो नौकरियों के अभाव में आर्थिक सुरक्षा व समता प्राप्त कर पाना संभव नहीं। लेखिका ने दलित समुदाय को संगठित

होकर, स्वरोजगार का या कोई लघु या कुटीर उद्योग लगाने का संदेश दिया है।

जाति व पितृसत्ता का मुकाबला करने के लिए, शक्ति सम्पन्न होना आवश्यक है। आत्मबल हो, तो बाहुबल भी परिस्थितियों के अनुसार आ ही जाता है। सुशीला जी की कहानी 'दमदार' की नायिका सुमन आत्मशक्ति के कारण ही जग्गू पहलवान को परास्त कर पाती है। सुमन से प्रेरणा ग्रहण कर, जग्गू द्वारा प्रताड़ित अन्य स्त्रियां, जैसे पगली व प्रेमलता भी जग्गू पर प्रहार कर, अपना प्रतिशोध लेती हैं।

साहित्य की विभिन्न विधाओं में सुशीला जी लिख रही हैं। उनकी अधिकांश कविताएं कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से मंजी हुई हैं। किन्तु यह बात उनकी कहानी व एकांकियों, नाटकों के संदर्भ में अधिकांशतः नहीं कही जा सकती। उनकी कहानियों के विषय अच्छे हैं। दलित एवं स्त्री विमर्श पर उन्होंने पर्याप्त मात्रा में लिखा है। उनकी कुछ कहानियाँ कथ्य एवं शिल्प के घरातल पर श्रेष्ठ हैं। कुछ कहानियाँ कथ्यगत श्रेष्ठता के बावजूद, शिल्प की दृष्टि से कुछ कमजोर रह गई हैं। कहानियों में परिवेशगत डिटेल्स, पात्रों की भाव-भंगिमाएँ एवं अन्तर्द्वन्द्व आनुपातिक रूप से नहीं आ पाए हैं, जिससे

कहीं–कहीं वह उद्बोधनात्मक सी प्रतीत होती है। यही बात उनके नाटक व एकांकियों के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है।

ऐसा लगता है, एक उद्देश्य को सामने रखकर उन्होंने पात्र व परिस्थितियों को गढ़ा है। भावों एवं विचारों का अनायास उच्छलन, जो पाठक को रस मग्न करता हुआ, उसे लेखक के भावालोक तक पहुंचा देता है, कहीं नहीं हो पाया है। किन्तु दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र में यह कहा ही जा चुका है कि वहाँ कथ्य प्रधान है, शिल्प नहीं। और कथ्य सुशीला जी की सभी रचनाओं के, चाहे वह दलित विमर्श से संबंधित हो या नारी विमर्श से–उच्च आदर्शों एवं समतामूलक समाज के गठन से संबंधित है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि महिला दलित लेखकों में सुशीला टाकभौर जी निश्चित ही एक बड़े स्थान की अधिकारी हैं एवं भविष्य में भी वह अपनी कलम से दलित समाज का मार्ग प्रशस्त करती रहेगीं।

डॉ. सुमित्रा महरोल
एसोसिएट प्रोफेसर
श्याम लाल कॉलेज (सांध्य)
पता डी–160, ग्राउंड फ्लोर, रामप्रस्थ कॉलोनी,
गाजियाबाद, 201011 (उत्तर प्रदेश)
मो. 9650466938

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हमारे हिस्से का सूरज, (प्रथम संस्करण), शरद प्रकाशन, नागपुर, पृ. 26.

2. वही, पृ. 35.

3. जीवन के रंग (नाटक), शरद प्रकाशन, शील-2, गोपाल नगर, तीसरा बस स्टॉप, नागपुर-22.

4. रंग और व्यंग्य, (एकांकी संग्रह), शरद प्रकाशन, नागपुर।

5. नंगा सत्य (नाटक), शरद प्रकाशन, नागपुर।

6. शिकंजे का दर्द (आत्मकथा), वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

7. संघर्ष (कहानी संग्रह), शरद प्रकाशन, नागपुर।